IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

मलिक मुहम्मद जायसी कृत 'पदमावत' में प्रतीक-विधान

डॉ॰ शिव कुमार
एसोसिएट प्रोफ़ेसर,
हिंदी-विभाग,
महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय,

शोध सारांश : साहित्य में प्रभावी भावाभिव्यक्ति हेतु प्रतीकों का विशेष योग रहता है। प्रतीक ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न अनुशासनों में एक विशिष्ट चिह्न के अर्थ में प्रयोग प्रयुक्त हुए हैं। साहित्यशास्त्र में प्रयुक्त प्रतीक अधिक गहन, सूक्ष्म और व्यंजक अभिव्यक्ति अर्थ स्तरों को प्रकट करने में समर्थ होते हैं। प्रतीक, किसी अन्य स्तर की समानरूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु है। भारतीय साहित्यशास्त्र में अलंकार, शब्दशक्ति आदि कई विभावन हैं जिनका प्रतीक के साथ निकट का संबंध है। निकट होते हुए भी उनमें तादात्म्य की दृष्टि से सूक्ष्म भेद है। प्रतीक को रूढ़ उपमान भी कहा जाता है। प्रतीक एक प्रकार का अचल बिंब ही है। भाव की प्रभावशीलता एवं स्पष्टता में प्रतीक विशेष योगकारी हैं। साहित्य में प्रतीकों के विभिन्न प्रयोजन माने गए हैं। प्रतीक-विधान के अंतर्गत प्रकृति, दर्शन, अध्यात्म, इतिहास, समाज एवं संस्कृति आदि से प्रतीकों को लिया जाता है। प्राकृतिक प्रतीक मानवीय अनुभूति, प्रवृत्ति, परिवेश की सफल एवं प्रभावी अभिव्यक्ति में विशेष योग देते हैं।

सूफी-काव्य में प्रतीकों को विभिन्न संदर्भों में अपनाया गया है। प्रतीक सूफी साहित्य के मूलाधार हैं। कवि जायसी ने प्रतीकों के माध्यम से लौकिक प्रेम की अलौकिक प्रेम में परिणति दिखलाई गई है। कवि ने भौरा, दादुर, सूर्य, किरण, हीरा, सरोवर, समुद्र, फूल, सीप, मोती आदि प्रतीकों द्वारा मानवीय मनोभावों की सफल अभिव्यक्ति की है। उपसंहार में पात्रों को आध्यात्मिक दृष्टि से प्रतीकवत मानते हुए प्रेम-कथा की अलौकिकता को प्रतीकार्थ वर्णित किया है। ऐतिहासिक एवं पौराणिक प्रतीकों के माध्यम से न केवल कवि ने अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है बल्कि वर्ण्य-विषय की व्यंजकता में उन्हें योगकारी रूप में चित्रित किया है। इसी प्रकार, परंपरागत प्रतीकों को अपनाते हुए स्पष्ट एवं प्रभावी अभिव्यक्ति की है। अतः 'पदमावत' में निहित प्रतीक-विधान जायसी की उन्नत काव्यप्रतिभा एवं बहुज्ञता का परिचायक है।

बीज शब्द : प्रतीक, अनुशासन, साहित्यशास्त्र, प्राकृतिक, आध्यात्मिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, परंपरागत, ब्रह्मरंध, बहुज्ञता, लोकजीवन।

काव्यानुभूति की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति में प्रतीकों का विशेष महत्त्व है। यूँ तो मानव जीवन प्रतीकों से परिपूर्ण है। मनुष्य प्रतीकों के माध्यम से ही चिंतन, मनन करता है। शब्दकोशानुसार प्रतीक शब्द के अर्थ, चिह्न, निशान, आकृति, रूप, मुख, प्रतिरूप, स्थानापन्न वस्तु, प्रतिमा, मूर्ति, किसी शब्द संख्या, नाम, गुणता या सिद्धांत आदि का सूचक चिह्न (अँ॰ सिंबल) दिया गया है।"[1] हिंदी का 'प्रतीक' शब्द अंग्रेज़ी के 'सिम्बॉल' का ही पर्याय है। ज्ञान विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में एक विशिष्ट चिह्न आदि अर्थों में प्रतीक शब्द का प्रयोग हुआ है, परंतु साहित्यशास्त्र में प्रयुक्त प्रतीक शब्द अपने प्रतीकार्थ रूप में अन्य ज्ञान-विज्ञान की शाखाओं से अधिक गहन, सूक्ष्म और व्यंजक अभिव्यक्ति अर्थस्तरों को उद्घाटित करने की क्षमता रखता है। हिंदी साहित्य कोश के अनुसार - "प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य (अथवा गोचर) वस्तु के लिए किया जाता है, जो किसी अदृश्य (अगोचर या अप्रस्तुत) विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है; अथवा कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर की समानरूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करनेवाली वस्तु प्रतीक है।"[2] प्रतीक के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए माना गया है कि "प्रतीकों की दो विशेषताएँ होती हैं। प्रतीक सदैव किसी न किसी मध्यस्थ प्रकार के व्यापार का प्रतिनिधि होता है। इसका आशय यह है कि सभी प्रतीकों में ऐसे अर्थ निहित होते हैं, जिनको केवल प्रत्यक्ष अनुभव के संदर्भ में नहीं माना जा सकता। दूसरी यह कि प्रतीक शक्ति को घनीभूत कर देता है, प्रतीक की तुच्छता और उसके द्वारा निर्दिष्ट वास्तविक महत्त्व के परिमाण में कोई संबंध नहीं होता।"[3]

साहित्य में गूढ़ एवं सूक्ष्म विचारों, भावों एवं अनुभूतियों को, जो सामान्य शब्दों और परंपरागत अलंकारों के सामर्थ्य से संभव नहीं हो पाता उस अर्थबोध की अभिव्यक्ति हेतु प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है। डॉ॰ भगीरथ मिश्र के अनुसार - "अपने रूप, गुण, कार्य या विशेषताओं के सादृश्य एवं प्रत्यक्षता के कारण जब कोई वस्तु या कार्य किसी अप्रस्तुत वस्तु, भाव, विचार, क्रियाकलाप, देश, जाति, संस्कृति आदि का प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रकट किया जाता है, तब वह प्रतीक कहलाता है।"[4] भारतीय काव्यशास्त्र में कई ऐसे विभावन हैं जिनका प्रतीक से निकट का संबंध माना जाता है। इस दृष्टि से 'रूपकातिशयोक्ति' और 'लक्षणा' को माना जा सकता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसी संदर्भ में माना है कि 'प्रतीकों का व्यवहार हमारे यहाँ के काव्य में बहुत कुछ अलंकार प्रणाली के भीतर ही हुआ है।'[5] परंतु यहाँ तादात्म्य की दृष्टि से सूक्ष्म भेद है। प्रतीक का रूप अन्य काव्यशास्त्रीय विभावनों से संबंध स्पष्ट करते हुए डॉ॰ कुमार विमल का मत है कि 'सचमुच काव्य के प्रतीक ऐसे अप्रस्तुत हैं जो प्रस्तुत का निगरण किये रहते हैं, ये प्रतीक हमें प्रायः शुद्धा साध्यावसाना या गौणी साध्यावासना प्रयोजनवती लक्षणा से ही वांछित अर्थ देते हैं अर्थात् प्रतीक अप्रस्तुत और प्रस्तुत दोनों को अपने भीतर समाविष्ट रखते हैं - इन्हीं प्रतीकों में से कुछ ऐसे प्रतीक होते हैं जो अप्रस्तुत प्रतीक न होकर उपमान की तरह दीख पड़ते हैं।'[6] प्रतीक को विशेष उपमान या रूढ़ उपमान भी विभिन्न आचार्यों ने माना है। इस विषय में डॉ॰ नगेन्द्र का मत है कि 'प्रतीक एक प्रकार से रूढ़ उपमान का ही दूसरा नाम है। जब उपमान स्वतंत्र न रहकर पदार्थ विशेष के लिए रूढ़ हो जाता है तो वह प्रतीक बन जाता है। इस प्रकार प्रत्येक प्रतीक अपने मूल रूप में उपमान होता है। धीरे-धीरे उसका बिंब रूप या चित्र रूप संचरणशील न रहकर स्थिर या अचल हो जाता है। अतः प्रतीक एक प्रकार का अचल बिंब है, जिसके आयाम सिमटकर अपने भीतर बंद हो जाते हैं।'[7] इस प्रकार प्रतीक की पहली शर्त तादात्म्य है। इस सूक्ष्म संबंध के बिना प्रतीक विधान संभव नहीं है। प्रस्तुत भाव की प्रभावशीलता में प्रतीकों का योग रहता है, उनमें प्रस्तुत अर्थ के प्रतिबिंब उभरते रहते हैं।

अतः प्रतीक रूढ़ उपमान का ही दूसरा नाम है। वह उपमान जो स्वतंत्र न रहकर किसी पदार्थ विशेष के लिए रूढ़ हो जाता है, प्रतीक कहलाता है। सूफी काव्य में प्रतीकों के महत्त्व के विषय में पं॰ चन्द्रबली पाण्डेय का मत है - "यूँ तो किसी भी भक्ति भावना में प्रतीकों की प्रतिष्ठा होती है पर वास्तव में तसव्वुफ में उसका पूरा प्रसार है। प्रतीक सूफी साहित्य के राजा हैं। उनकी अनुभूति के बिना सूफियों के क्षेत्र में पर्दापण करना एक सामान्य अपराध है। प्रतीकों के महत्त्व को समझ लेने पर तसव्वुफ एक सरल चीज़ हो जाती है, उसके भेद आप ही खुल जाते हैं। किंतु प्रतीकों से अनभिज्ञ रहने पर सूफियों का मर्म मिलना तो दूर रहा, उनकी एक बात भी समझ में नहीं आती।"[8]

प्रतीकों के काव्य में विभिन्न प्रयोजन माने गए हैं। प्रतीकों के चयन में केवल बाह्य सादृश्य एवं साधर्म्य ही आधार नहीं होता बल्कि आंतरिक सारूप्य एवं प्रभाव-साम्य का योग निहित होता है। हिंदी साहित्य कोश में प्रतीकों के पाँच प्रयोजन माने गए हैं - किसी विषय की व्याख्या करना, उसको स्वीकृत करना, पलायन का पथ प्रस्तुत करना, सुप्त एवं दमित अनुभूति को जाग्रत करना, अलंकरण या प्रदर्शन का साधन होना।'[9]

जायसी कृत 'पदमावत' में प्रतीक-प्रयोजन के इन्हीं आधारों पर ही प्रतीक-विधान किया गया है। निराकार ब्रह्म की प्रणयानुभूति की अभिव्यक्ति सामान्य कार्य नहीं है। जायसी ने अलौकिक अनुभूति की अभिव्यंजना हेतु स्थान-स्थान पर प्रतीकों का काव्य में समावेश किया है। उन्होंने प्रतीक-विधान के अंतर्गत प्रकृति, समाज, संस्कृति, इतिहास, दर्शन एवं परंपरा से प्रतीकों को चुना है। गूढ़ रहस्यात्मक अभिव्यक्ति की सफल अभिव्यंजना की है। इसी आधार पर जायसी कृत 'पदमावत' में प्रतीक-विधान का निरूपण किया जा सकता है।

प्राकृतिक प्रतीक

प्रकृति मानव की सहचरी है। साहित्य में प्राकृतिक प्रतीकों का बाहुल्य रहा है। मानवीय अनुभूतियों, शारीरिक एवं मानसिक अवस्थाओं की प्रभावी एवं व्यंजक अभिव्यक्ति में काव्य में प्राकृतिक प्रतीकों को अपनाया गया है। जायसी ने अनेक प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से विभिन्न भावों की प्रभावी अभिव्यंजना की है। प्रकृति जगत से गृहीत प्रतीकों का 'पदमावत' में विभिन्न स्थलों पर देखा जा सकता है। भौरां और दादुर प्रतीकों से कवि ने रसिक और अरसिक के स्वभाव को व्यंजित किया है। वे कहते हैं -

"भँवर आइ बनखँड सन लेइ कँवल कै बास।
दादुर आस न पावई भलहि जो आछै पास।।"[10]

यहाँ कवि ने सुगंध प्राप्ति में पास और दूरी को कोई कारण नहीं माना है। मानवीय रसिक और अरसिक स्वभाव को भौरे और दादुर के प्रतीकों द्वारा व्यंजित किया है।

पद्मावती जन्म के समय विभिन्न प्राकृतिक प्रतीकों के द्वारा पद्मावती के श्रेष्ठ रूप को दिखलाया है।

"सूर प्रसंसै भएउ फिरीरा। किरिन जामि, उपना नग हीरा।।"[11]

यहाँ राजा गन्धर्वसेन को सूर्य, रानी चम्पावती को किरण और पòवति को नग हीरे के प्राकृृतिक प्रतीकों द्वारा अभिव्यंजित किया है।

कवि ने एक अन्य काव्य-स्थल पर रत्नसेन, नागमती और पद्मावती को क्रमशः भ्रमर, चम्पा और मालती प्रतीकों से प्रेम दृष्टि की बात की है। जिस प्रकार भ्रमर को मालती से प्रेम होने पर चम्पा से आसक्ति नहीं रहती। ठीक वैसे ही राजा रत्नसेन को दिव्य पद्मावती से प्रेम होने पर नागमती से आसक्ति नहीं है। वे कहते हैं-

"भौंर बास चम्पा नहिं लेई। मालति जहाँ तहाँ जिउ देई।।"[12]

कवि ने गहरे जल के प्रतीक द्वारा विरह की अधिकता को व्यंजित किया है। पद्मावती की असहनीय वेदना-वर्णन में जायसी कहते हैं -

"नीर गँभीर कहाँ हो पीया। तुम्ह बिनु फाटै सरवर हीया।
गहए हेराइ, परेहु कहि हाथा? चलत सरोवर लीन्ह न साथा।।
चरत जो पंखि केलि कै नीरा। नीर घटे कोइ आव न तीरा।।
कँवल सूख, पखुरी बेहरानी। गलि गलि कै मिलि छार हेरानी।।"[13]

यहाँ चितौड़ को एक सरोवर का प्रतीक मानते हुए समस्त पक्षियों, फूलों में उदासीनता से वेदना विह्वल स्थिति का चित्रण सार्थक बन पड़ा है। इसी प्रकार, पद्मावती, नागमती विलाप खंड में प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से विरह वर्णन अत्यंत मार्मिक बन पड़ा है। सीप, मोती, प्राकृतिक प्रतीक विरह-व्यथा को व्यंजित करते हैं। समुद्र दुख की अधिकता और पहाड़ विरह बनकर विरही की छाती पर आसीन है। यौवन के लिए वह असहनीय बन पड़ा है। वे कहते हैं -

"नैन सीप, मोती भरि आँसू। टुटि टुटि परहिं करहिं तन नासू।।
बूडति हौ दुख दगध गँभीरा। तुम बिनु कंत! लाव को तीरा?।।
हिये बिरह होइ चढ़ा पहारू। चल जोबन सहि सकै न भारु।।"[14]

कवि ने विरह में जहाँ प्राकृतिक प्रतीकों को लिया है वहाँ हर्षोल्लास में भी प्राकृतिक प्रतीकों को बख़ूबी चित्रित किया है। पद्मावती को चाँद, राजा रत्नसेन को सूर्य एवं सखियों का तारों के माध्यम से हर्षित दिखलाया है। समस्त वातावरण की छटा को वसंत ऋतु कहकर अभिव्यंजित किया है।

"बिहँसि चाँद देइ माँग सेंदूरु। आरति करै चली जहँ सूरू।।
औ गोहन ससि नखत तराई। चितउर कै रानी तहँ ताई।।
जनु बसंत ऋतु पलुही छूटी। की सावन महँ बीर बहूटी।।"[15]

समुद्र का मानवीकरण करते हुए उसके ज्वार को होश उड़ाने वाला कहा है। समुद्र आँखें दिखा रहा है, लगता है वह निगलने को तैयार है। वे कहते हैं -

"गै औसान सबन्ह कर, देखि समुद के बाढ़ि।
नियर होत जनु लीलै, रहा नैन अस काढ़ि।।"[16]

जायसी ने यौवन को भ्रमर और हंस को बुढापे के द्वारा व्यक्त किया है। भ्रमर और हंस प्राकृतिक प्रतीक प्रभावी अभिव्यक्ति में योगकारी सिद्ध हुए हैं।

"जोबन जल दिन दिन जस घटा। भँवर छपान, हंस परगटा।"[17]

'पदमावत' में प्राकृतिक प्रतीकों की बहुलता है। विभिन्न अवसरों पर भावों की सार्थक अभिव्यक्ति में प्राकृतिक प्रतीक-विधान अभिव्यंजना में विशेष योगकारी बन पड़ा है। जायसी के प्रतीक-विधान के विषय में डॉ॰ रघुवंश का मानना है कि "जायसी के अप्रस्तुत विधान का क्षेत्र बहुत व्यापक है, जिसके अंतर्गत प्रतीकों के माध्यम से जीवन और जगत् के सत्य और उसके अनुभव की अभिव्यक्ति तथा परात्पर के अनुभव की व्यंजना भी आती है। जायसी ने अपने प्रबंध की कल्पना सूफी प्रेम-साधना को कथा की योजना में पात्रों के संबंध और भावों की अभिव्यक्ति करने के रूप में की है। अतः उसकी वस्तु के विकास में निरंतर प्रतीकार्थ का प्रयोग चलता है।"[18]

आध्यात्मिक प्रतीक

सूफी काव्य में निराकार की प्रणयानुभूति रहस्यवाद का मूलाधार है। जायसी ने अपने आध्यात्मिक सूक्ष्म विचारों की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का प्रयोग किया है। अलौकिक भावों को ज्ञात करने के लिए अर्थात् लौकिक प्रेम के अंतर्गत अलौकिक प्रेम अर्थात् ईश्वरीय सत्ता का आभास विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से किया है। कवि ने पद्मावती जन्मखंड में कथा का प्रतीकात्मक सांकेतिक आध्यात्मिक अर्थ दिया है -

"चंपावति जो रूप सँवारी। पदमावति चाहै औतारी।।

भै चाहै असि कथा सलोनी। मेटि न जाइ लिखी जस होनी।।

सिंघलदीप भए तब नाऊँ। जो अस दिया बरा तेहि ठाऊँ।।

प्रथम सो जोति गगन निरमई। पुनि सो पिता माथे मनि भई।।"[19]

यहाँ जायसी ने चंपावति को जीवात्मा, पद्मावती को दिव्य-ज्योति, सिंहलद्वीप को शरीर, शिवलोक एवं ब्रह्मलोक प्रतीकों के आधार पर आध्यात्मिक अर्थ की व्यंजना की है। इन सांकेतिक प्रतीकात्मक अर्थ के द्वारा कथा को विस्तार प्रदान किया है। कथा-विस्तार में आगे पद्मावती को ब्रह्मज्योति और कविलास को ब्रह्मरन्ध्र का प्रतीक रूप में चित्रित किया है। वे कहते हैं -

"भा निसि मँह दिन कर परकासू। सब उजियार भएउ कबिलासू।।"[20]

सुआ खंड में कवि ने आध्यात्मिक भाव को व्यंजित किया है। तोते को जीव का प्रतीक और मजारी को काल का प्रतीक माना है। शरीर के दस द्वार पिंजरें के प्रतीक से प्रकट किए हैं।

"दस दुवार जैहि पींजर माँहाँ। कैसे बाँच मँजारी पाँहा।।"[21]

एक अन्य स्थल पर सिंहल को ब्रह्मरन्ध के प्रतीकार्थ में लिया है। सिंहल का राज्य अत्यंत कठिन है, उसकी प्राप्ति सहज नहीं है। उसके मार्ग में विभिन्न बाधाएँ है। वे कहते हैं -

"कठिन आहिं सिंघल कर राजू। पाइय नाहिं जूझ कर साजू।।

ओहि पथ जाइ जो होइ उदासी। जोगी, जती, तपा, संन्यासी।।"[22]

इसी प्रकार, गढ़ के प्रतीक द्वारा काया, शरीर को वर्णित किया है। कवि कहते है कि कोई सिद्ध योगी ही घोर तपस्या, साधना द्वारा सिंहल रूपी सिद्धि को प्राप्त कर सकता है।

"गढ़ तस बाँक जैसि तेरि काया। पुरुष देखु ओही कै छाया।।
पाइय नाहिं जूझ हठि कीन्हें। जेइ पावा तेइ आपुहिं चीन्हें।।
नौ पौरी तेहि गढ़ मझियारा। औ तहँ फिरहिं पाँच कोटवारा।।
दसवै दुआर गुपुत एक ताका। अगम चढ़ाव, बाट सुठि बाँका।।
भेदै जाइ सोइ वह घाटी। जो लहि भेद, चढ़ै होई चाँटी।।
गढ़ तर कुंड, सुरँग तेहि माहाँ। तहँ वह पंथ कहौं तोहि पाहाँ।।
चोर बैठ जस सैंधि सँवारी। जुआ पैंत जस लाव जुआरी।।
जस मरजिया समुद धँस, हाथ आव तब सीप।
ढूँढ़ि लेइ जा सरग दुआरी, चढ़ै सो सिंघलदीप।।"[23]

कवि ने यहाँ शरीर, साधना एवं लक्ष्यसिद्धि में बाधाएँ और उन पर विजय प्राप्ति हेतु विभिन्न प्रतीकों से सफल एवं प्रभावी अभिव्यक्ति की है। इसी प्रकार साधना मार्ग में लोभ और अज्ञान को प्रतीकात्मक अर्थ में व्यंजित किया है। वे कहते हैं -

"जो न होत चारा कै आसा। कित चिरिहार ढुकत लेइ लासा।।
यह विष चारै सब बुधि ठगी। औ भा काल हाथ लेइ लगी।।"[24]

जीव और उसकी सांसारिकता को जायसी ने समुद्र, मछली आदि के प्रतीकों द्वारा प्रभावी अभिव्यक्ति की है। उनके अनुसार जीव के बुरे कर्मों के कारण वह दुष्परिणाम भोगने को विवश है।

"जब अंजल मुँह सोवा, समुद न सँवरा जागि।
अब धरि काढ़ि मच्छ जिमि, पानी माँगति आगि।।"[25]

पदमावत की कथा के अंत में उपसंहार के अंतर्गत समस्त कथा के आध्यात्मिक अर्थ को विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से व्यंजित किया है। चौदह भुवन को मानवपिंड रूप में, चितौड़ को शरीर, रत्नसेन को मन, सिंघलद्वीप को हृदय, पद्मावती को बुद्धि, हीरामन तोता को गुरु, नागमती को दुनिया-धंधा, राघवचेतन को शैतान और अलाउद्दीन को माया का प्रतीक माना है। भले ही इस पद को जायसी से रचित नहीं मानते फिर भी 'पदमावत' में समस्त कथा में आध्यात्मिक प्रतीक इस अर्थ की सांकेतिक पुष्टि अवश्य करते दिखाई पड़ते हैं।

"मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा। कहा कि हम्ह किछु और न सूझा।।
चौदह भुवन जो तर उपराहीं। ते सब मानुष के घट माहीं।
तन चितउर, मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा।।
गुरु सुआ जेइ पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।।
नागमती यह दुनिया धंधा। बाँचा सोइ न एहि चित बंधा।।
राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू।।
प्रेमकथा एहि भाँति बिचारहु। बूझि लेहु जौ बूझे पारहु।।

तुरकी, अरबी, हिंदुई, भाषा जेती आहिं।

जेहि महँ मारग प्रेम कर, सबै सराहैं ताहि।।”[26]

इस रूप में रचना आध्यात्मिक प्रेम की कथा है। इसमें निहित दिव्य, अलौकिक, प्रेम को हम इन प्रतीकों के सहारे ही समझ सकते हैं। यही प्रतीक ‘पदमावत’ को अन्योक्ति की श्रेणी में लाते हैं। इस विषय में डॉ॰ विश्वनाथ त्रिपाठी का मत है कि “पùिनी’ परम सत्ता का प्रतीक है, रतनसेन साधक का तथा राघवचेतन शैतान का। कथा लौकिक धरातल पर चलने के साथ-साथ लोकोत्तर अर्थ की भूमि पर भी चलती है। इसीलिए पदमावत को प्रतीकात्मक काव्य कहा जाता है, किंतु यह प्रतीकात्मकता सर्वत्र नहीं है और इससे लौकिक कथा-रस में व्याघात नहीं पड़ता।”[27] जायसी द्वारा ‘पदमावत’ में प्रयुक्त आध्यात्मिक प्रतीक जीव, संसार, विपत्ति, लोभ, तृष्णा, माया, मोह, शैतान, अज्ञान आदि विभिन्न अर्थों की सार्थक अभिव्यंजना में योगकारी हैं।

ऐतिहासिक प्रतीक

साहित्य में ऐतिहासिक एवं पौराणिक प्रतीकों के माध्यम से प्रभावी एवं व्यंजक अभिव्यक्ति में योग रहता है। विभिन्न संदर्भीय ऐतिहासिक एवं पौराणिक नाम, घटनाएँ प्रतीक का रूप धारण कर लेती हैं। इन्हीं प्रतीकों द्वारा समग्र आशय को प्रतीकात्मक अर्थ मिलता है। ये सभी प्रतीक मानव-स्मृति का हिस्सा होते हैं। कवि इन्हीं प्रतीकों को अपनाते हुए अभिव्यक्ति को कम शब्दों में सार्थक एवं प्रभावी रूप प्रदान करता है।

जायसी कृत ‘पदमावत’ में भी विभिन्न ऐतिहासिक एवं पौराणिक प्रतीकों के द्वारा कवि ने अपनी प्रखर काव्य-प्रतिभा एवं बहुज्ञता का परिचय दिया है। वे शेरशाह की दानशीलता को ऐतिहासिक प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं-

“पुनि दातार दई जग कीन्हा। अस जग दान न काहू दीन्हा।

बलि विक्रम दानी बड़ कहे। हातिम करन तियागी अहे।।

सेरसाहि सरि पूज न कोऊ। समुद सुमेर भंडारी दोऊ।।[28]

यहाँ राजा बलि, राजा विक्रम और हातिम एवं कर्ण की दानशीलता की प्रसिद्धि के लिए प्रतीक रूप में अपनाते हुए शेरशाह की दानशीलता की महानता को दिखलाया गया है।

इसी प्रकार पद्मावती-गोरा-बादल-संवाद खंड में विभिन्न ऐतिहासिक प्रतीकों का जायसी ने प्रयोग किया है। गोरा-बादल की वीरता, कर्त्तव्यनिष्ठा, दृढ़प्रतिज्ञा एवं दुष्टों का संहार करने वाले गुणों की प्रतीकों द्वारा प्रभावी अभिव्यंजना की है।

“राम लखन तुम दैत सँघारा। तुमहीं घर बलभद्र भुवारा।

तुमहीं द्रोन और गंगेऊ। तुम्ह लेखौं जैसे सहदेऊ।।

तुमहिं युधिष्ठिर और दुरजोधन। तुमहीं नील नल दोउ संबोधन।।

परसुराम राघव तुम जोधा। तुम्ह परतिज्ञा तें हिय बोधा।।

तुमहिं सत्रुहन भरतकुमारा। तुमहिं कृस्न चानूर सँघारा।।

तुम परदुम्न और अनिरुध दोऊ। तुम अभिमन्यु बोल सब कोऊ।।

तुम्ह सरि पूज न बिक्रम साके। तुम हमीर हरिचंद सत आँके।।"[29]

यहाँ गोरा-बादल के पराक्रम एवं वीरता के लिए राम, लक्ष्मण, कृष्ण, बलदाऊ, द्रोण, भीष्म, युधिष्ठिर, दुर्योधन, नल, नील, परशुराम, भरत, शत्रुघ्न, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, अभिमन्यु, विक्रमादित्य, हमीर, हरिश्चंद्र आदि विभिन्न प्रतीकों से अपार, अदम्य साहस एवं सामर्थ्य की अभिव्यजना की गई है।

विभिन्न ऐतिहासिक एवं धार्मिक तीर्थस्थलों की महत्ता को प्रतीकवत अपनाते हुए विरह निवारण में जायसी ने उनका कार्य-सिद्धि में योग दर्शाया है। प्रयागराज, बनारस, गया, जगन्नाथपुरी, द्वारका, केदारनाथ, अयोध्या की महिमा को दिखलाया है। वे कहते है -

गयउँ प्रयाग मिला नहिं पीऊ। करवत लीन्ह, दीन्ह बलि जीऊ।।

जाइ बनारस जारिउँ कया। पारिउँ पिंड नहाइउँ गया।।

जगन्नाथ जगरन कै आई। पुनि द्वारिका जाइ नहाई।।

जाइ केदार दाग तन, तहँ न मिला तिन्ह आँक।

ढूँढ़ि अयोध्या आइउ, सरग दुवारी झांक।।[30]

पद्मावती के विरह-वर्णन में मनोदशा की अभिव्यक्ति में भर्तृहरि और पिंगला पात्रों के प्रतीकों से असहनीय विरह-वेदना को व्यंजित किया गया है।

भरथरि बिछुरि पिंगला, आहि करत जिउ दीन्ह।

हौ पापिनी जो जियत हौं, इहै दोष हम कीन्ह।।[31]

इस प्रकार, जायसी ने विभिन्न पात्रों, घटनाओं एवं व्यक्तित्व के गुणों में ऐतिहासिक एवं पौराणिक प्रतीकों द्वारा वर्ण्य-विषय की श्रीवृद्धि के साथ सफल एवं प्रभावी अभिव्यक्ति की है।

परंपरागत प्रतीक

सभ्यता और संस्कृति, लोकाचार हेतु साहित्य में विशिष्ट अर्थ को व्यंजित करने वाले संकेतात्मक शब्द परंपरागत प्रतीक माने जा सकते हैं। "लोकजीवन की गहराइयों में जायसी की यह पैठ ही कवि के रूप में उनकी सबसे बड़ी पूँजी बनकर सामने आई है। 'पदमावत' भले ही राजमहलों में बसने वालों की प्रेमकथा हो, जायसी के यहाँ उसका 'ट्रीटमेंट' विशुद्ध लोकजीवन से पाए अनुभवों से जुड़कर हुआ है।[32]

जायसी ने जोगी और भौंरें द्वारा अस्थिर प्रेमी के परंपरागत प्रतीक को लिया है। वे कहते हैं -

"जोगी भौंर निठुर ए दोऊ। केहि आपन भए? कहै जौ कोऊ।।

एक ठाँव ए थिर न रहाहीं। रस लेइ खेलि अनत कहुँ जाहीं।।"[33]

यहाँ भौंरें और जोगी पर प्रेम में विश्वासघात का आरोप है। इसी प्रकार परंपरा से चले आ रहे सुंदरता की आभा के लिए दूज के चाँद के प्रतीक को रखा है।

"चढ़ी सिंघासन झमकति चली। जानहु चाँद दुइज निरमली।"[34]

एक अन्य स्थल पर नागमती और पद्मावती के लिए गंगा-जुमना के परंपरागत प्रतीक द्वारा परस्पर प्रेम को प्रकट किया है।

"गंग जमुन तुम नारि दोउ, लिखा मुहम्मद जोग।

सेव करहु मिलि दूनौ, तौ मानहु सुख भोग।।"[35]

परंपरागत प्रतीक दीपक और पतंगे द्वारा प्रेम में सर्वस्व न्यौछावर करने की स्थिति को दर्शाया है। पद्मावती रत्नसेन के साथ सती होने को तत्पर है, सर्वस्व न्यौछावर कर प्राणों की आहुति के लिए समर्पित है। वे कहते हैं -

"दीपक प्रीति पतंग जेउँ, जनम निहाब करेउँ।

नेवछावरि चहुँ पास होइ, कंठ लागि जिउ देउँ।।"[36]

कवि जायसी ने 'पदमावत' में विभिन्न स्थलों पर परंपरागत प्रतीकों द्वारा प्रभावी भाव-चित्रण किया है। समग्र रूप से, जायसी कृत 'पदमावत' में प्राकृतिक, आध्यात्मिक, ऐतिहासिक, पौराणिक एवं परंपरागत प्रतीकों द्वारा मार्मिक एवं सारगर्भित अभिव्यक्ति प्रदान की है। प्राकृतिक प्रतीक जहाँ संयोग-वियोग में मानवीय भावों को प्रकट करते हैं, वहाँ आध्यात्मिक प्रतीकों से दार्शनिक एवं रहस्यवादी अभिव्यक्ति हुई है। ऐतिहासिक, पौराणिक एवं परंपरागत प्रतीक भावाभिव्यक्ति को विस्तार देते हैं। निश्चित रूप से 'पदमावत' का प्रतीक-विधान जायसी की उत्कृष्ट काव्य-प्रतिभा का प्रमाण है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 लघु हिंदी शब्द सागर, सं॰ पं॰ करुणापति त्रिपाठी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, तृतीय नवीन संस्करण, संवत् 2050, पृष्ठ-644
2 हिंदी साहित्य कोश (भाग-1), सं॰ धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, तृतीय संस्करण, 1985, पृष्ठ-398
3 वही, पृष्ठ-399
4 काव्यशास्त्र, डॉ॰ भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, त्रयोदश सं॰ 1999, पृष्ठ-271
5 चिंतामणि (भाग-2), आचार्य रामचंद्र शुक्ल, सरस्वती मंदिर काशी, संस्करण 2010, पृष्ठ-110
6 सौंदर्यशास्त्र के तत्व, डॉ॰ कुमार विमल जैन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1967, पृष्ठ-260
7 काव्य-बिंब, डॉ॰ नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1967, पृष्ठ-8
8 तसव्वुफ अथवा सूफीमत, पं॰ चन्द्रबली पाण्डेय, सरस्वती मंदिर, जतनबर, बनारस, 1948, पृष्ठ-97
9 हिंदी साहित्य कोश (भाग-1), सं॰ धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, तृतीय संस्करण, 1985, पृष्ठ-400
10 जायसी ग्रंथावली, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, उन्नीसवाँ संस्करण, सं॰ 2056, पृष्ठ-8
11 वही, पृष्ठ-18
12 वही, पृष्ठ-122
13 वही, पृष्ठ-237
14 वही, पृष्ठ-237
15 वही, पृष्ठ-263
16 वही, पृष्ठ-58
17 वही, पृष्ठ-242
18 जायसी: एक नयी दृष्टि, डॉ॰ रघुवंश, लोकभारती, प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2008, पृष्ठ-177
19 जायसी ग्रंथावली, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, उन्नीसवाँ संस्करण, सं॰ 2056, पृष्ठ-18
20 वही, पृष्ठ-18
21 वही, पृष्ठ-24
22 वही, पृष्ठ-46
23 वही, पृष्ठ-83
24 वही, पृष्ठ-25

25 वही, पृष्ठ-235
26 वही, पृष्ठ-270
27 हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, डॉ॰ विश्वनाथ त्रिपाठी, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, प्रथम पुनर्मुद्रित संस्करण 2020, पृष्ठ-31
28 जायसी ग्रंथावली, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, उन्नीसवाँ संस्करण, सं॰ 2056, पृष्ठ-6
29 वही, पृष्ठ-251-252
30 वही, पृष्ठ-247
31 वही, पृष्ठ-243
32 भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, शिव कुमार मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संशोधित प्रथम संस्करण, 2010, पृष्ठ-125
33 जायसी ग्रंथावली, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, उन्नीसवाँ संस्करण, सं॰ 2056, पृष्ठ-123
34 वही, पृष्ठ-252
35 वही, पृष्ठ-178
36 वही, पृष्ठ-268